© 2017 IJSRST | Volume 3 | Issue 8 | Print ISSN: 2395-6011 | Online ISSN: 2395-602X
Themed Section: Science and Technology

भूमण्डलीकरण की अपसंस्कृति और ग्रामीण जीवन के हिन्दी उपन्यास

संजय कुमार
(शोध छात्र),हिन्दी–विभाग
इलाहाबाद विश्वविद्यालय, इलाहाबाद

21वीं सदी वाले भूमण्डलीकरण और ग्रामीण जीवन की जड़े हजारों वर्ष पहले नहीं खोजी जा सकती थी। वर्तमान समय में ग्रामीण स्तर पर भूमण्डलीकरण की चर्चा जिस संदर्भ में गर्म हुई है वह अमेरिका पूंजीवाद, पश्चिमी जनतंत्र वाली प्रणाली के साथ जुड़ी है। भूमण्डलीकृत आर्थिकता एवं अमेरिकी संस्कृति की आंधी ने भारत ही नहीं बल्कि पूरे विश्व में खलबली मचा रखी है। असमान पूंजीवाद के चलते अमीर–गरीब की खाई को और अधिक चौड़ा कर दिया जिस कारण से अमीर और अधिक अमीर तथा निर्धन और अधिक निर्धन होता चला जा रहा है।

विज्ञान तथा संचार टेक्नोलॉजी के अविष्कारों ने विश्व के छोटे–बड़े राज्यों को आपस में इस तरह से मिला दिया है कि विश्व 'ग्लोबल विलेज' में परिवर्तित हो गया है। भूमण्डलीकरण ने हमारे आर्थिक जगत को प्रभावित करने के साथ ही साथ सामाजिक, सांस्कृतिक, राजनीतिक, साहित्यिक जगत को भी प्रभावित किया है। हमारे देश में जो भूमण्डलीकरण की ग्रामीण स्तर पर जीवन की जो स्थितियां बनती चली गई, वह उपन्यास के माध्यम से रूपायित हुई है। 21वीं सदी में ग्रामीण स्तर पर जो बदलाव आया उनका यथार्थ रूप हमें विभिन्न उपन्यासों में देखने को मिलता है।

काशीनाथ सिंह का उपन्यास 'काशी का अस्सी' (2002) में प्रकाशित हुआ, जिसमें 21वीं सदी के ग्रामीण जीवन में भूमण्डलीकरण का यथार्थ रूप देखने को मिलता है। इस उपन्यास में भूमण्डलीकरण, उपभोक्तावाद, उपनिवेशवाद को काशी के संस्कृति पर पड़ते हुए दिखाया गया है। 'काशी का अस्सी' उपन्यास भूमण्डलीकरण के ग्रामीण समाज के हर पहलू को अपनी संस्कृति में समेटे हुए है। अस्सी के लोगों की जहां लंगोट और जनेऊ उनकी पहचान हुआ करती थी, अब वह बदल गई है। वहां के लोग नये–नये तरह के पहनावे पहन रहे हैं। इस पर काशीनाथ सिंह ने भी लिखा है– ''तो सबसे पहले इस मुहल्ले का मुख्तर सा वायोडाटा कमर में गमछा, कंधे पर लंगोट और बदन पर जनेऊ यह यूनिफार्म है

काशी की।''[1] अतः वर्तमान भूमण्डलीकरण के समय में काशी की संस्कृति बदल रही है जहाँ काशी धर्म एवं संस्कृति के लिए जानी जाती है वह अब भूमण्डीकरण के दौर में खोती जा रही है।

'काशी का अस्सी' उपन्यास में ग्रामीण स्तर पर बाजारवाद को भी दर्शाया गया है। पं0 धर्मनाथ शास्त्री (उपन्यास के पात्र) बाजारवाद के झाँसे में आ जाते है और 'पेइंग गेस्ट' रखने को तैयार हो जाते हैं। इसी प्रलोभन में आकार जहाँ उनके घर में शिवलिंग की स्थापना हुई थी उस शिवलिंग को तोड़वाकर वहां पर शौचालय बनवा डालते हैं जिससे मादलिन (पेइंग गेस्ट) जो पं0 धर्मनाथ के यहाँ 'पेइंग गेस्ट' के रूप में रहने वाली है उसे कोई परेशानी न हो और पं0 धर्मनाथ को उससे अच्छी खासी कमाई हो सके। इस प्रकार का बदलाव हमारे काशी के अस्सी पर ही नहीं पूरे देश पर पड़ा है।

टेलीविजन का प्रचार–प्रसार विज्ञापनों के माध्यम से शुरू हुआ और अब पूरे समाज पर पड़ने लगा। काशीनाथ ने इस उपन्यास में दर्शाया है कि इस प्रकार से हंसी–खुशी, के लिए लोगों के पास अब समय नहीं रह गया है लोग अपने आप में सिमटते जा रहे हैं। काशीनाथ ने लिखा है कि ''अमेरिका ने एक टीका ईजाद किया है। टीका क्या है, ड्रॉप क्या है, ड्रॉप है। हंसी निरोधक ड्रॉप! पैदा होते ही किसी बच्चे को एक बूंद दे दी जाए तो हंसी जीवन भर के लिए खत्म, फिर वे मनहुस ही मर जायेगें, हमेशा के लिए। सुना है वह इसका प्रयोग जापान पर कर चुका है। जिसे हंसी निरोधक ड्रॉप कह रहे हो, वह ड्रांप व्राप नहीं, यही टी0वी0 है।''[2]

चित्रा मुद्गल का उपन्यास '(गिलिगडु)' (2002) में चित्रा मुद्गल ने लिखा है कि भूमण्डलीकरण के आने से हमारे पारिवारिक संस्कृति और संयुक्त परिवार का विघटन हो रहा है और इस बदलते समय में लोगों को अपने परिवार के साथ रहने के लिए समय नहीं मिल पाता लोग धन को महत्व दे रहे है। वृद्धों को आज के समय के बहू–बेटे परेशानी समझते है।

गिलिगडु उपन्यास में वृद्ध जसवंत सिंह को घर में वृद्ध होने के कारण कोई उनका सम्मान तक नहीं करता है। वृद्ध जसवंत सिंह अपने पोते से भावनात्मकता व्यक्त करने के लिए पोते के जन्मदिन पर घर में पार्टी रखना चाहते थे जबकि मलय के जवाब से उन्हें बहुत आत्मग्लानि होती है– ''उसका यह कार्यक्रम उसके दोस्तों के साथ है घर वाले इसमें शामिल नहीं होंगे। मम्मी को वैसे भी जन्मदिन मनाने में झंझट होता है, दादू। अपने साथ हम किसी बड़े को ले जायेगें तो पार्टी बोरिंग हो जायेगी।''[3] कर्नल स्वामी जो जसवंत सिंह के मित्र है दोनों लोग कहीं बाहर जाते है तो बहू को यह बर्दाश्त नहीं होता। उनके कपड़े गन्दे होने पर बहू कहती है उनके पायजामें में लगे खून के धब्बे (बवासीर के कारण) वाशिंग मशीन में नहीं छूटते। उनके बाथरूम में रिन की बट्टी रख दी गई है।

कपड़े धोने डालने से पहले वे स्वयं धब्बो को तनिक रगड़ दिया करें। बच्चों के सफेद यूनिफार्म इसी लापरवाही के चलते लगभग पीले पड़ रहे।''[4] इस प्रकार चित्रा मुद्गल का 'गिलिगडु' भूमण्डलीकरण के दौर में वृद्धावस्था की त्रासदी को दर्शाता है। जो 21वीं सदी के ग्रामीण से लेकर पूरे देश की यही दशा है जो 'गिलिगडु' के वृद्ध जसवंत सिंह की है।

रामधारी सिंह 'दिवाकर' का उपन्यास 'अकाल संध्या' (2006) में 21वीं सदी के ग्रामीण समाज में मजदूरों और निम्नवर्गीय लोगों के बदलाव एवं विकास की कहानी है। गांव के मजदूर लोग आर्थिक विकास एवं आत्मसम्मान के लिए शहरों की तरफ पलायन कर रहे हैं जिस कारण से पारम्परिक सामाजिक व्यवस्था बदल गयी जहाँ निम्न जाति के लोग सवर्णों के घर खेती, मजदूरी करते और घर की स्त्रियाँ झाड़ू, गोबर, करसी का काम करती थी, फिर भी उनको आत्मसम्मान नहीं मिल पाता था। ''दिल्ली, पंजाब, हरियाणा से लेकर जम्मू तक काम की तलाश में निकलने वाले इन मजदूरों के कारण गांव की कृषि व्यवस्था चरमरा गई है। बनी–बनाई समाज की व्यवस्था भी दरक गई है। गांव में कोई रहना नहीं चाहता। बूढ़े, कमजोर और कुछ निकम्मे बचे हैं या तो कोई छोटा–मोटा काम कर लेते है या अपनी बाड़ी–झाडी और खेती–पथारी। इनके घर की औरत भी रोपनी–डोभनी, कमौनी–कटनी करना नहीं चाहती। बेटा, पति या भाई–भतीजे बाहर से मनीआर्डर भेजते ही हैं तो क्यों जाए मेहनत–मजूरी।''[5] आर्थिक आत्मविश्वास आ जाने से निम्न वर्ग के घर भी घास फूंस की जगहों पर पक्के मकान और अपनी स्वयं की जमीन हो गयी।

अलका सरावगी का उपन्यास 'एक ब्रेक के बाद' (2008) में भूमण्डलीकरण उपभोक्तावाद एवं बाजारवाद को पूरे देश में आये लगभग 20 वर्ष हो गये हैं परन्तु अब पूरा देश इस नवपूंजी की छलावी दुनिया को समझ गया है लेकिन इसके जाल में पूरी तरह से फंस गया है और इससे निकलने का अभी तक कोई रास्ता नहीं निकल पा रहा है। इस भूमण्डलीकरण का प्रभाव हमारे ग्रामीण स्तर पर अप्रत्यक्ष रूप से पड़ा है।

अलका सरावगी ने 'एक ब्रेक के बाद' उपन्यास में उपभोक्तावाद और बाजारवाद के बारे में कहती है कि आज रूपये की कीमत घट रही है। लोग महंगे से महंगा मोबाइल खरीद रहे हैं और आज करोड़ों–करोड़ों के दाम वाली वस्तु को आसानी से खरीदने की क्षमता रखते है। आज के समय में विज्ञापन हमारी खरीददारी के लिए शहर से लेकर ग्रामीण स्तर के लोगों के लिए वस्तु का निर्धारण करता है–'' अब गए वे दिन जब इंडिया में सरकारी अफसर तय करते थे कि औरतें बाजार से कौन सी क्रीम और लिपिस्टिक खरीदेंगी और लोग किस टी0वी0 पर कौन सा प्रोग्राम देखेंगे। अब तो देश के

दस करोड़ मोबाइल फोन वाले परेशान हैं कि पचासों मॉडलों में से कौन सा मोबाइल खरीदें । अभी चंडीगढ़ के एक युवक ने मोबाइल का फैन्सी नम्बर प्राप्त करने के लिए पन्द्रह लाख रूपये दिये हैं और उसके माँ–बाप ने उसकी इस सफलता पर मिठाई बांटी है। दो करोड़ क्रेडिट कार्ड वाले परेशान हैं कि कौन–सा एयरकंडीशन, कौन–सा कैमरा, कौन–सा वैक्यूम क्लीनर और कौन–सा माइक्रोवेब खरीदें। के0वी0 ने एक कोरियन कम्पनी का बड़ी गाड़ी खरीद ली है और उसमें बैठकर कभी ऐसा नहीं हुआ कि उन्हें अपने दिल में एक खुशी की लहर महसूस न हुई हो। खासकर जब पास से मारूति जेन या सेन्ट्रो गाड़ियाँ गुजरती हैं, तो के0वी0 अपने आपको शाबाशी देते हैं कि सिर्फ दो–तीन लाख की कंजूसी करके छोटी गाड़ी खरीद उन्होंने अपने को इस खुशी से वंचित नहीं किया।''[6]

इस उपभोक्ता चक्र में अमीर–गरीब, शहरी और ग्रामीण लोग भी फंसे हुये हैं किसी के सपने छोटे तो किसी के बड़े है, ''बस्तर के गाँव में झोंपड़ी में बैठकर आदिवासी टी0वी0 पर वाशिंग मशीन में कपड़े धुलते देख रहा है और डबल डोर फ्रीज में जाने कब से रखी ताजी लौकी और टमाटर की गाथा सुन रहा है। इस देश की एक अरब जनता अब एक साथ सपने देख रहा है फर्क यही है कि किसी के सपने छोटे तो किसी के ज्यादा बड़े सपने।''[7] इस तरह से 'एक ब्रेक के बाद' में 21वीं सदी के भूमण्डीकरण और ग्रामीण जीवन में ग्रामीण स्तर पर उपभोक्तावाद और बाजारवाद का प्रभाव दिखायी पड़ता है।

21वीं सदी में प्रदीप सौरभ का उपन्यास 'मुन्नी मोबाइल' (2009) में उपभोक्तावादी प्रवृत्ति के कारण मुन्नी जो बिहार से दिल्ली काम–काज करने के लिए आती है और मोबाइल फोन के द्वारा दुनिया को अपने बस में करने का स्वप्न देखती है। उसके लिये पैसा ही सब कुछ है वह इसके लिए कार्ल गर्ल रैकेट चलाने के लिए अपनी खुद की बेटी रेखा चितकबरी को इस दलदल में घसीट लेती है। आज के समय में मुन्नी और चितकबरी जैसी लड़कियां पूरे देश में है जो इंटरनेट, ब्लॉग से सोशल नेटवर्किंग साइट्स के द्वारा देह व्यापार का धंधा चलाती है। ''कॉलगर्ल वर्ल्ड में मुन्नी की जगह रेखा चितकबरी ने ले ली थी। आनंद भारती को इस बार कोई हैरानी नहीं हुई थी बल्कि मन ही मन वह रेखा की यही तस्वीर अपने मन में बना चुके थे। इसके अलावा रेखा के रास्ते किसी और दिशा में भला जाते भी कैसे ? मुन्नी ने जो रास्ता चुना था, रेखा के लिए वही उसकी विरासत थी।''[8] आज के समय में गाँवों में इस तरह की औरतें चोरी छिपे इस तरह के देह व्यापार को मोबाइल फोन के द्वारा संचालित करती हैं।

'रणेन्द्र जी' का उपन्यास 'ग्लोबल गांव के देवता' (2010) जिसमें भूमण्डलीकरण के चलते असुर संस्कृति के लोगों को बेघर कर दिया। खानों के खनन होने से असुर जाति के लोगों की जमीन, घर एवं उनकी संस्कृति नष्ट हो जा रही है। वहां पर पूंजीपतियों के लिए पार्क, खेल के मैदान आदि बनाये जा रहे हैं। 'ग्लोबल गांव के देवता' में रणेन्द्र जी ने लिखा है– ''फूलों, पार्को से लदी हरी–भरी खूबसूरत कालोनी। एक से एक स्कूल, चमचमाते बाजार, कलब घर, योगाकेन्द्र, लाइब्रेरी, खेल के मैदान और न जाने क्या–क्या! सुन्दर –सुन्दर कुत्तों को घुमाती सुन्दर सुन्दर महिलायें, बर्फ के गोलों से गुलथुल उजले–उजले बच्चे, रंग विरंगी गाडियाँ! लगा इन्द्रलोक धरती पर उतर आया हो।''[9]

असुर–जाति की लोक संस्कृति उनके तीज–त्योहार, रहन–सहन खान–पान एवं उनके रीति–रिवाजों को नष्ट कर दिया जा रहा है। उनकी जमीनों पर बहुराष्ट्रीय कम्पनियों का निर्माण हो गया और जमीनों का अधिग्रहण कर लिया गया। आज के समय में इस वैश्वीकरण की आंधी पूरे देश के ग्रामीण इलाकों में चल रही है।

रणेन्द्र जी का उपन्यास 'गायब होता देश' (2014) में आदिवासी 'मुण्डा' समाज और संस्कृति पर भूमण्डलीकरण के यथार्थ प्रभाव को दर्शाया है। विकास के नाम पर उन्हीं की जमीन पर जबरदस्ती कब्जा करना। रणेन्द्र जी कहते है कि मुण्डाओं का देश सोने की तरह था। मुण्डाओं का कोकराह सोने के कणों में जगमगाती स्वर्ण रेखा, हीरों की चमक से चमचमाती शंख नदी, सफेद हाथी श्यामचंद्र एवं इन सब से बढ़कर हरे सोने, साल साखुआ के जंगल यही 'सोना लेकन दिसुम'। यही वह किशनपुर शहर विलिंकसन साहब ने कोकराह में बसाया था। कितना सुन्दर था वह अपना सोना जैसा देश। रणेन्द्र जी ने यहाँ पर लिखा है कि ''लेकिन इंसान थोड़ा ज्यादा समझदार हो गया। उसने सिंग बोंगा की व्यवस्था में हस्ताक्षेप करना शुरू कर दिया। उसने लोहे के घोड़े दौड़ाने के लिए शाम वन की लाशें गिरानी शुरू कर दी। उसने बंदरगाह बनाने, रेल की पटरियाँ विछाने, फर्नीचर बनाने मकान बनाने के लिए अंधाधुंध कटाई शुरू कर दी । मरांग बुरू–बोंगा की छाती की हर अमूल्य निधि, धातु–अयस्क उसे आज ही अभी ही चाहिए था। इन्ही जरूरत से ज्यादा समझदार इंसानों की अंधाधुंध उड़ान के उठे गुबार–बवंडर में सोना लेकन दिसुम गायब होता जा रहा था। सरना–वनस्पति जगत गायब हुआ, मरांग–बुरू बोंगा, पहाड़ देवता गायब हुए, गीत गाने वाली, धीमी बहने वाली, सोने की चमक बिखेरनेवाली, हीरों से भरी सारी नदियाँ जिनमें इकिर बोंग–जल देवता का वास था गायब हो गयी। मुंडाओं के बेटे–बेटियाँ भी गायब होने शुरू हो गए। सोने लेकन दिसुम गायब होने देश में तब्दील हो गया।''[10] विकास आदिवासी लोगों और प्राकृतिक वनों को तहस–नहस कर रहा है। भूमण्डलीकरण के

कारण रणेन्द्र के गायब होता देश में 'कोकराह' की तरह हमारा देश भी गायब हो रहा है। डॉ0 प्रणय कृष्ण के शब्दों में ''21वीं शदी के हिन्दी उपन्यासों में संजीव का 'रह गयी दिशाएँ इसी पार' के बाद 'गायब होता देश' ही उत्तर–पूंजी के इस युग में कार्पोरेट मुनाफे के तंत्र द्वारा विज्ञान के सर्वातिशायी अपराधीकरण की परिघटना को सामने लाता है।''[11]

सन्दर्भ ग्रंथ सूची

1. काशीनाथ सिंह–काशी का अस्सी, राजकमल प्रकाशन, 2002, पृ0सं0–11
2. काशीनाथ सिंह– काशी का अस्सी, राजकमल प्रकाशन, 2002, पृ0सं0–151
3. चित्रा मुद्गल–गिलिगडु, सामयिक प्रकाशन, दिल्ली, 2002 पृ0सं0–33
4. चित्रा मुद्गल–गिलिगडु, सामयिक प्रकाशन, दिल्ली, 2002 पृ0सं0–71
5. रामधारी सिंह 'दिवाकर'– अकाल संध्या, भारतीय ज्ञानपीठ, 2006, पृ0सं0–97
6. अलका सरावगी– एक ब्रेक के बाद, राजकमल प्रकाशन, 2008, पृ0सं0–113
7. अलका सरावगी– एक ब्रेक के बाद, राजकमल प्रकाशन, 2008, पृ0सं0–11
8. रणेन्द्र – ग्लोबल गाँव के देवता, भारतीय ज्ञानपीठ, 2010, पृ0सं0–16
9. पुष्पपाल सिंह – 21वीं शती का हिन्दी उपन्यास, राधाकृष्ण प्रकाशन नई दिल्ली, 2015, पृ0सं0–321
10. रणेन्द्र–गायब होता देश, पेंगुइन बुक्स इंडिया, पृ0सं0–2–3, 2014
11. नीरू अग्रवाल– भूमण्डलीकरण और हिन्दी उपन्यास, अनन्य प्रकाशन, 2015, पृ0सं0–124